खण्ड-7, अंक-1, वर्ष-2019, मु0प्र0 131-135
D.O.I.: 10.22445/avsp.v7i1.23

वैज्ञानिक/ज्ञानवर्धक आलेख

महर्षि वाल्मीकि की पर्यावरण संवेदना

महेन्द्र प्रताप सिंह
वन संरक्षक/स्टाफ ऑफीसर
कार्यालय–प्रधान मुख्य वन संरक्षक और विभागाध्यक्ष
17, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
mahendrapratapsingh1960@gmail.com

प्राप्त तिथि–06.08.2019, स्वीकृत तिथि–04.09.2019

सार– पर्यावरण प्रदूषण आज की सबसे विकट समस्या है। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर पूरे विश्व में इसके समाधान के प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु जनमानस में पर्यावरण के प्रति जो संवेदना होनी चाहिये उसका सर्वथा अभाव दिखता है। यही कारण है कि हर स्तर के सारे प्रयास के बावजूद इस दिशा में अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि का साहित्य इस दिशा में प्रेरणा स्रोत है। उनका पर्यावरण प्रेम किसी आर्थिक लाभ या प्रसिद्धि के लिए नहीं था। वे वन में ही रहते थे तथा पेड़ पौधे वन्य जीव उनके परिवार के अंग थे। आज उक्त भावना को पुनर्जीवित करने की प्रबल आवश्यकता है। यदि हम अपने पूर्वजों की भावना का अनुसरण करें तो स्वाभाविक रूप से पर्यावरण के प्रति भावनात्मक लगाव होगा। प्रस्तुत लेख में महर्षि वाल्मीकि की पर्यावरण संवेदना की विवेचना की गई है।

बीज शब्द– संवेदना साहित्य का मूल है, अरण्य संस्कृति, करो या मरो के भाव से पर्यावरण सरक्षण के प्रति समर्पित होना, प्रेम की भाषा, वृक्षों के कटान को अपने किसी परिजन की मृत्यु जैसा अनुभव करना

Environmental feelings of Maharishi Valmiki

Mahendra Pratap Singh
Conservator of Forests/ Staff Officer
Office-Principal Chief Conservator of Forests and Head
17, Rana Pratap Marg, Lucknow-226001, UP, India
mahendrapratapsingh1960@gmail.com

Abstract- Environmental pollution is the major problem today. Efforts are being made to solve this at the international and national levels all over the world, but there is a complete lack of sensation towards the environment in the public mind. This is the reason why despite all efforts at every level, the desired results are not being found in this direction. The literature of Maharishi Valmiki is the source of inspiration in this direction. His environmental love was not for any economic gain or fame. They lived in the forest and trees and wildlife were the part of their family. Today there is a strong need to revive the said spirit. If we follow the spirit of our ancestors, then naturally there will be an emotional attachment to the environment. In the present article, an environmental feeling of Maharishi Valmiki is inquired.

Key words- Sensation is the origin of literature, Aranya culture, and commitment to environmental protection in the sense of do or die language of love, to feel the pruning of trees like the death of a family member

1. **परिचय–** महर्षि वाल्मीकि को विश्व का आदिकवि होने का गौरव प्राप्त है। भारत की पुण्यभूमि पर इस महाकवि ने साहित्य को लयबद्ध कर उसे रागात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। देववाणी संस्कृत में विश्व की प्रथम कविता का 'श्लोक' के रूप में आविर्भाव हुआ। स्वयं वाल्मीकि एवं अन्य मनीषि उनके इस अद्भुत कृतित्व से चकित थे। साहित्य में छन्दबद्ध रूप से हृदय के मनोभाव को प्रगट करने की विधा सामने आयी, जो बाद में पूरे विश्व में भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी। वस्तुतः छन्दबद्ध कविता ही संगीत की जननी है। इस प्रकार साहित्य एवं संगीत जगत सदैव आदिकवि वाल्मीकि का ऋणी रहेगा।

मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि आदिकवि बाल्मीकि के मुख से धरती की यह प्रथम कविता कैसे प्रस्फुटित हुई? वस्तुतः

हृदय से निकली भावों की सरस धारा ही कविता का मूल है। राग सभी जीवों को प्रिय है। पशु पक्षी भी अपनी भाषा में गाते हैं। कोयल की राग में बच्चे राग मिलाया ही करते हैं। तोता एवं मैना पर मानव समाज सदैव मुग्ध रहा है। पक्षियों का कलरव, भौरों का गुन्जार, झरनों की झरझर, नदियों का कल–कल एवं अन्य अनेक रूपों में हम प्रकृति के संगीत का आनन्द उठाते आए हैं। हम प्रायः अनेक पशु पक्षियों एवं वन्यजीवों को संगीत का आनन्द उठाते देखा करते हैं। बीन पर नाचते सर्प वन्यजीवों के संगीत प्रेम का एक प्रमुख उदाहरण है। संगीतकार या विद्वान ही नहीं, अनपढ़ व्यक्ति भी प्रायः गुनगुनाता रहता है। जब कोई विद्वान हृदय की अनुभूतियों को शब्दों में ढालता है तब कविता आकार लेती है। लयबद्ध रागात्मक गद्य ही कविता या पद्य है। यदि हम गहराई से विचार करें तो पाते हैं कि श्रेष्ठ साहित्य के मूल में कहीं न कहीं पीड़ा छिपी होती है। यह पीड़ा नितान्त वैयक्तिक भी हो सकती है किन्तु श्रेष्ठ व्यक्ति समाज की दुर्दशा को देखकर या आसपास के वातावरण, पर्यावरण अथवा किसी अन्य जीव की पीड़ा से एकाकार होकर व्यथित हो उठता है। संवेदना साहित्य का मूल है। संवेदनहीन विचारक श्रेष्ठ साहित्यकार नहीं हो सकता। साहित्यकार भी समाज का अंग है। वातावरण एवं समाज की पीड़ा से अपने को अलग करके वह प्राणहीन हो जाता है। समाज की पीड़ा से जूझते समय उसकी आँखों से निकले आँसू ही श्रेष्ठ कविता का सृजन करते हैं। ऐसे सृजन में अन्तःकरण को बेधने की क्षमता होती है तथा ऐसा कृतित्व देश काल की सीमा को चीरते हुए अमर हो जाता है।

2. **रामायण आधारित विवरण**– हमारी प्रचीन संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति रही है। प्राचीन काल में हमारे पूर्वज ऋषि मुनि घनघोर जंगलों में रहकर अपने ज्ञान के आलोक से समस्त विश्व को आलोकित करते थे। वन ही उनका सहज परिवार था। वे वृक्षों एवं वन्यजीवों के बीच प्रकृति की गोद में अपना मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास कर संसार का पथ प्रदर्शन किया करते थे। धरती के बड़े से बड़े सम्राट भी ऐसे महर्षियों के सम्मुख नतमस्तक हो उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अपने को धन्य समझते थे तथा जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाते थे। यह संस्कृति और संस्कारों का ही प्रभाव था कि एक छोटे से पक्षी की पीड़ा से व्यथित होने पर महर्षि वाल्मीकि के मुख से अकस्मात दुनियॉ की पहली कविता निकल पड़ी। यह जीवों के प्रति उनके प्रगाढ़ प्रेम, आत्मीयता एवं संवेदना का द्योतक है। इससे हमारे ऋषियों के वनों एवं वन्यजीवों के प्रति मनोभाव परिलक्षित होते हैं। वे वनों एवं वन्यजीवों की सुरक्षा ही नहीं करते थे बल्कि उसे परिवार के सदस्य के रूप में मानते थे। यही कारण है कि बहेलिये द्वारा क्रौंच पक्षी के घायल होने पर ऋषि बाल्मीकि व्यथित हो उठे तथा उनके अन्तःकरण से कविता की रसधार निकल पड़ी। वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग में इसका वर्णन निम्न प्रकार है–

स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः।
विचचार ह पश्यंस्तत् सर्वतो विपुलं वनम्।।(1/2/8)[1]

शिष्य के हाथ से वल्कल लेकर वे जितेन्द्रिय मुनि वहाँ के विशाल वन की शोभा देखते हुये सब ओर विचरने लगे।

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र कौस्चयोश्चारुनिःस्तनम्।।(1/2/9)[1]

उनके साथ ही क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा, जो कभी एक–दूसरे से अलग नहीं होता था, विचर रहा था। वे दोनों पक्षी बड़ी मधुर बोली बोलते थे। ऋषि वाल्मीकि ने पक्षियों के उस जोड़े को वहाँ देखा।

तस्मात् तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः।।(1/2/10)[1]

उसी समय पापपूर्ण विचार रखने वाले एक निषाद ने, जो समस्त जन्तुओं का अकारण बैरी था, वहाँ आकर पक्षियों के उस जोड़ों में से एक–नर पक्षी को मुनि के देखते–देखते बाण से मार डाला।।

तं शोणितपरीताङं चेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करूणां गिरम्।।(1/2/11)[1]

वह पक्षी खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पंख फड़फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पति की हत्या हुई देख उसकी भार्या क्रौंची करुणाजनक स्वर में चीत्कार कर उठी।।

वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा।
ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै।। (1/2/12)[1]

उत्तम पंखों से युक्त वह पक्षी सदा अपनी भार्या के साथ–साथ विचरता था। उसके मस्तक का रंग तॉबे के समान लाल था और वह काम से

मतवाला हो गया था। ऐसे पति से वियुक्त होकर क्रौंची बड़े दुख से रो रही थी।

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत।।(1/2/13)[1]

निषाद ने जिसे मार गिराया था, उस नर पक्षी की वह दुर्दशा देख उन धर्मात्मा ऋषि को बड़ी दया आयी।

ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौंचीमिदं वचनमब्रवीत्।।(1/2/14)[1]

स्वभावतः करूणा का अनुभव करने वाले ब्रह्मर्षि ने यह अधर्म हुआ है। ऐसा निश्चय करके रोती हुयी क्रौंची की ओर देखते हुये निषाद से इस प्रकार कहा–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।(1/2/15)[1]

निषाद! तुझे नित्य–निरन्तर– कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली'।।

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया।।(1/2/16)[1]

ऐसा कहकर जब उन्होंने इस पर विचार किया, तब उनके मन में यह चिन्ता हुई कि 'अहो! इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर मैंने यह क्या कह डाला'।।

चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुन्गवः।।(1/2/17)[1]

यही सोचते हुये महाज्ञानी और परम बुद्धिमान मुनिवर वाल्मीकि एक निश्चय पर पहुँच गये और अपने शिष्य से इस प्रकार बोले–

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।।(1/2/18)[1]

तात! शोक से पीड़ित हुये मेरे मुख से जो वाक्य निकल पड़ा है, वह चार चरणों में आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में बराबर–बराबर (यानी आठ–आठ) अक्षर हैं तथा इसे वीणा के लय पर गाया भी जा सकता है, अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप (अर्थात् श्लोक नामक छन्द में आबद्ध काव्यरूप या यशःस्वरूप) होना चाहिये, अन्यथा नहीं''।।

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः।।(1/2/19)[1]

मुनि की यह उत्तम बात सुनकर उनके शिष्य भरद्वाज को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनका समर्थन करते हुये कहा–'हाँ, आपका यह वाक्य श्लोकरूप ही होना चाहिये।' शिष्य के इस कथन से मुनि को विशेष संतोष हुआ।।

समाक्षरैस्तुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः।।(1/2/40)[1]

हमारे गुरुदेव महर्षि ने क्रौंच पक्षी के दुःख से दुःखी होकर जिस समान अक्षरोंवाले चार चरणों से युक्त वाक्य का गान किया था, वह था तो उनके हृदय का शोक; किंतु उनकी वाणी द्वारा उच्चारित होकर श्लोक रूप हो गया'।।

यह घटना वन्यजीवों के प्रति आत्मीयता की पराकाष्ठा है। प्राचीनकाल में समाज को दिशा देने वाले ऋषि मुनियों का अनुकरणीय पर्यावरण प्रेम ही स्वस्थ एवं विकसित समाज की आधारशिला था। प्रकृति से दूर होकर एकांगी विकास किए जाने का कुपरिणाम आज पूरा समाज झेल रहा है। समग्र विकास हेतु बाल्मीकि जी की यह आत्मीयता ही हमें सही मार्ग पर ले जा सकती है। इस प्रकार धरती की प्रथम कविता में छिपे

मनोभाव आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है।

पर्यावरण शिक्षा के औपचारिक केन्द्र न होते हुए भी प्राचीन मनीषि पर्यावरण संरक्षण के प्रति पर्याप्त सजग थे। वे प्रकृति के सभी अवयवों को अपने परिवार का अंग मानते थे इसलिए उस समय पर्यावरण शिक्षा की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। समाज में किसी को यह शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं होती कि वह अपनी पत्नी, बच्चों एवं परिवार का ध्यान रखे। अपनी चल और अचल सम्पत्ति की रक्षा के प्रति सभी स्वाभाविक रूप से सजग होते हैं। कोई किसी को सिखाता नहीं कि वह अपने परिवार की रक्षा और सम्पत्ति की देखभाल करे, फिर भी परिवार और सम्पत्ति की रक्षा मानव सदा से करता आया है और आज भी कर रहा है। धीरे–धीरे एकांगी भौतिक विकास के साथ मानव की सोच संकुचित होती गई। हम सभी भलीभांति जानते हैं कि अगर शुद्ध वायु न मिले तो हमारा जीवन सम्भव नहीं है। शुद्ध जल के अभाव में सारे भौतिक विकास के बावजूद हमारा तड़प–तड़प कर मर जाना निश्चित है फिर भी हम लगातार वनों को समाप्त एवं जल स्रोतों को प्रदूषित करते जा रहे हैं। पेड़ों के कटने एवं नदियों को प्रदूषित होते देख हम यह अनुभव ही नहीं कर पाते कि हमारे परिवार का कोई सदस्य पीड़ा पा रहा है। यह अत्यन्त शोचनीय है कि पर्यावरण प्रदूषण को सहते एवं उसके कुपरिणामों को समझते हुए भी हम लगातार इसकी अनदेखी कर रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण के प्रति यह संवेदनहीनता ही वर्तमान सभ्यता को विनाश के कगार पर ले जा रही है। समाज को इस उदासीनता के प्रति विद्रोह कर 'करो या मरो' के भाव से पर्यावरण संरक्षण के प्रति समर्पित होना ही पड़ेगा, तभी उसके अस्तित्व की रक्षा हो सकेगी।[2]

ऋषि बाल्मीकि जैसी पर्यावरण चेतना अन्यत्र दुर्लभ है। रामायण में अनेक प्रेरक प्रसंग हैं जो प्रकृति के प्रति हमारी संकीर्ण भौतिकवादी विचारधारा को बदलकर हमें सही मार्ग पर ले जाने में सक्षम हैं। उनके अनुशीलन एवं अनुसरण से हम प्रदूषण के संकट से उबरकर अपने अस्तित्व की सुरक्षा कर सकते हैं। जब हम अपने किसी मित्र, सम्बन्धी से मिलते हैं तो सभी का हालचाल पूँछते हैं। किसी से मिलकर हम उसके बच्चों, परिवार आदि की ही कुशल पूँछते हैं। हम सबने कभी सोचा ही नहीं कि किसी की हाल चाल पूँछते समय उस क्षेत्र के वनों, नदियों, तालाबों या वन्यजीवों का समाचार जानने की चेष्टा करें। ऐसा इसलिए है कि अब हम वनों, नदियों, तालाबों या वन्यजीवों को परिवार का अंग मानते ही नहीं। पहले ऐसा नहीं था। उस समय लोग एक दूसरे का समाचार पूँछते समय वनों, बागों, जलस्रोतों आदि की भी कुशलता जानना चाहते थे। इसका कारण यह था कि उस समय लोग प्रकृति के विभिन्न अवयवों को परिवार की सीमा के अन्तर्गत ही मानते थे। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण चित्रकूट में राम भरत मिलन के समय मिलता है। श्री राम अपने दुखी भाई भरत से पूछते हैं कि उनके दुखी होने का क्या कारण है? क्या उनके राज्य में वन क्षेत्र सुरक्षित हैं? अर्थात् वन क्षेत्रों के सुरक्षित न रहने पर पहले लोग दुखी एवं व्याकुल हो जाया करते थे। उक्त उदाहरण निम्न प्रकार है–

कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः।
कच्चिन्न गणिकाश्चानाम् कुंजराणां च तृप्यसि।।(2/100/50)[1]

जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं, वे जंगल तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हैं न? तुम्हारे पास दूध देने वाली गायें तो अधिक संख्या में हैं न? (अथवा हाथियों को फंसाने वाली हथिनियों की तो तुम्हारे पास कमी नहीं है?) तुम्हें हथिनियों, घोड़ों और हाथियों के संग्रह से कभी तृप्ति तो नहीं होती?

लगातार बढ़ रहा पर्यावरण प्रदूषण और उसके कारण आसन्न धरती के संकट के प्रति पर्याप्त चेतना का अभाव अत्यन्त दुःखद एवं आत्मघाती है। समाज को अपने पुरातन से सीख लेकर अपने अपने परिवार की सीमा बढ़ानी होगी। जिस दिन से हम वनस्पतियों, वन्यजीवों, नदियों एवं प्रकृति के अन्य अवयवों को अपने परिवार का अंग समझने लगेंगे, पर्यावरण प्रदूषण उस दिन से दूर होने लगेगा। पेड़–पौधे एवं वन्यजीव सम्बंधों की भाषा समझते हैं। प्राचीन काल में ऋषि मुनि वनों में अनेक वन्यजीवों के बीच बड़ी आत्मीयता से रहते थे। पारिवारिक सदस्य की भॉति वे उन वन्यजीवों की देखभाल करते थे। ऐसा करने से उन्हें न तो कोई वित्तीय लाभ था न ही इसके पीछे उनकी कोई भौतिक आकांक्षा थी। वस्तुतः वनों एवं वन्यजीवों के प्रति प्रेम हमारे ऋषियों की स्वाभाविक वृत्ति थी। आश्रम में ऋषियों का साथ पाकर वन्यजीव प्रसन्न होते थे एवं उनके वियोग में पीड़ित हो जाते थे।[3] ऋषि–मुनियों के आश्रम से निकलने पर वहाँ रहने वाले जीव–जन्तु उनके पीछे ऐसे चलने लगते थे जैसे किसी व्यक्ति के घर से निकलने पर उसके बच्चे पीछे–पीछे चलने लगते हैं। इस सम्बन्ध में ऋषि विश्मामित्र का उदाहरण उल्लेखनीय है–

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कौशिकः स तपोधनः।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे।।(1/31/16)[1]

ऐसा कहकर तपस्या के धनी मुनिश्रेष्ठ कौशिक ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान आरम्भ किया।

तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम्।
शकटीशतमात्रं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम्।।(1/31/17)[1]

उस समय प्रस्थान के समय यात्रा करते हुये मुनिवर विश्वामित्र के पीछे उनके साथ जाने वाले ब्रह्मवादी महर्षियों की सौ गाड़ियाँ चलीं।

मृगपक्षिगणाश्रैव सिद्धाश्रमनिवासिनः।
अनुजग्मुर्महात्मात्मानो विश्वामित्रं तपोधनम्।।(1/31/18)[1]

सिद्धाश्रम में निवास करने वाले मृग और पक्षी भी तपोधन विश्वामित्र के पीछे–पीछे जाने लगे।

निवर्तयामास ततः सर्षिसंघः स पक्षिणः।
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे।।(1/31/19)[1]
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः।
तेस्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः।।(1/31/20)[1]

कुछ दूर जाने पर ऋषिमण्डली सहित विश्वामित्र ने उन पशु–पक्षियों को लौटा दिया। फिर दूर तक का मार्ग तै कर लेने के बाद जब सूर्य अस्ताचल को जाने लगे, तब उन ऋषियों ने पूर्ण सावधान रहकर शोणभद्र के तट पर पड़ाव डाला। जब सूर्यदेव अस्त हो गये, तब स्नान करके उन सबने अग्निहोत्र का कार्य पूर्ण किया।

3. **निष्कर्ष**– आज इसी वृत्ति के विकास की आवश्यकता है। बच्चों एवं अन्य परिजनों का किसी पारिवारिक सदस्य के पीछे लग लेना आत्मीयता का प्रतीक है। वियोग की पीड़ा मानव की भाँति वन्यजीवों को भी सताती है। सृष्टि का सर्वोत्तम जीव होने के कारण मानव का यह उत्तरदायित्व है कि वह सृष्टि के सभी अवयवों की रक्षा करते हुए उनसे भावनात्मक सम्बन्ध बनाए रखे। जब हमारे किसी सम्बन्धी का अन्त होता है तब हम फूट–फूट कर रोते हैं किन्तु किसी वृक्ष के कटने पर हमारे अन्तःकरण में कोई संवेदना जागृत नहीं होती। वह वृक्ष, जो प्राणवायु प्रदाता है तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जिसका मानव समाज पर असीम उपकार है, उसके कटने पर हम कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न कर उदासीन बने रहते हैं। कई बार तो छोटी–छोटी लालच वश वनों का क्रूरता से विनाश कर डालते हैं। जब कोई व्यक्ति हमारा छोटा सा भी कार्य करता है तब हम उसे धन्यवाद देकर कृतज्ञता ज्ञापित करना नहीं भूलते किन्तु जो वृक्ष हमें जीवन भर प्राणवायु एवं अन्य महत्वपूर्ण उपहार देता रहता है तथा मरने (काटे जाने) के बाद भी कीमती प्रकाष्ठ दे जाता है, उसकी उपेक्षा अमानवीयता की पराकाष्ठा है। सम्भवतः वृक्षों का कटना हम मौत मानते ही नहीं। जिस दिन से समाज वृक्षों के कटान को अपने किसी परिजन की मृत्यु जैसा अनुभव करने लगेगा, वृक्षों के प्रति संवेदना स्वतः जागृत हो जाएगी।

संदर्भ

1. वाल्मीकि रामायण भाग–1 व भाग–2 प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0, भारत।
2. सिंह, महेन्द्र प्रताप(2017) राम वन गमन पथ की वनस्पतियां, प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, 21–ए दरियागंज, नई दिल्ली, भारत।
3. सिंह, महेन्द्र प्रताप(2000) मानस में प्रकृति विषयक संदर्भ, प्रकाशक–पर्यावरण ज्ञान यज्ञ समिति, लखनऊ, उ0प्र0, भारत।